International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 8, August- 2017,
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939

प्राचीन भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय अवधारणा

डॉ0 सत्येन्द्र प्रताप सिंह

वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति ने मानव जीवन को बहुविध रूप में प्रभावित कर जहाँ एक ओर मानव को पृथ्वी लोक से आकाशीय लोक तक की यात्रा को सुगम बनाया और विविध प्रकार के रहस्यों से पर्दा उठाकर मानव की जिज्ञासाओं को शान्त करने में महती भूमिका का निर्वहन किया है वहीं दूसरी ओर इसने परिस्थितिकी एवं पर्यवरणीय अन्तर्सम्बंधों में नकारात्मक प्रभाव भी छोड़ा है जो मानव जीवन को बहुविध रूप से प्रभावित कर अनेक चिन्ताओं को जन्म दिया और व्यापक विमर्श का मुद्दा भी बना दिया है। प्रश्न यह उठता है कि वर्तमान पर्यावरणीय चिन्ताओं से मुक्ति एवं मानवीय सभ्यता के समुचित विकास के लिए क्या कदम उठाये जाये? इस संदर्भ में यदि गहन विचार विमर्श करें तो हमें एक महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति का अनुगमन एवं उसे व्यावहारिक आयाम देना अपरिहार्य प्रतीत होता है।

भारती की सांस्कृतिक अवधारणा के विषय में यह मिथ्या प्रचारित है कि इसमें केवल आत्मा व परमात्मा संबंधी चिंतन दिखाई देता है। किन्तु भारतीय मनीषा में पर्यावरणीय चिंतन संबन्धी व्यापक विमर्श का पुट प्राचीन भारतीय सहित्यों वेद उपनिषद, पुराण, रामायाण, महाभारत एवं बुद्ध तथा महावीर के जीवन–दर्शन तथा ऋषि–मुनियों एवं आयुर्वेदाचार्यो के उपदेशों आदि के अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि भारतीय चिंतन सर्वथा वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक आयामों से युक्त है। समाज एवं प्रकृति का परस्पर अन्तर सम्बन्ध प्राचीन भारतीय संस्कृति की विशेषता है। किन्तु औद्योगिक क्रांति एवं आधुनिक विकास की गति पर्यावरणीय अवधारणाओं को बिल्कुल ही ध्वस्त करता नजर आने लगा है। मानव की भोगवादी लिप्सा ने जिस उपभोक्तावादी संस्कृति को आगे बढ़ाया है, भयावह समस्या को जन्म देने लगी है। अतः यह नितान्त जरूरी हो गया है कि हमारी भावी जीवन की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए प्रतिबद्धता के साथ प्रयास किया जाये और इन वर्तमान संकटपूर्ण पर्यावरणीय चिन्ताओं से मुक्ति के लिए प्राचीन भारतीय संस्कृति का अनुगमन एवं उसे व्यावहारिक आयाम दिया जाये।

भारतीय संस्कृति में आदि काल से ही प्रकृति संरक्षण सम्बन्धी चिन्तन धारा विद्यमान रही है। यहाँ प्राकृतिक शक्तियों को देवताओं का रूप दिया गया है। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल आदि को देवी एवं देवता का रूप दिया गया है। जैविकीय अर्थात् हमारे आस–पास का वातावरण जिसमें वन, जल, वायु, मिट्टी जैविकीय एवं अन्य प्राकृतिक संसाधन एवं सम्पदा शामिल होते हैं। भारत की प्राचीनतम मुद्रा (आहत मुद्रा) पर प्राप्त होने वाले चिन्हों, यथा–सूर्य, वृक्ष, पर्वत, ज्यामितीय आकृतियाँ कहीं न कहीं प्रकृति पूजक समाज का चित्र प्रस्तुत करती है। वेदों में कहा गया है कि जो अग्नि, जल, आकाश,

पृथ्वी, वायु से आच्छादित है तथा जो औषधियों एवं वनस्पति में विद्यमान है उस पर्यावरणीय देव को हम नमस्कार करते है।[1]

''यो देवोऽग्नों योऽप्सु योविश्वं भूवनमाविवेश
यो औषधिषु यो वनस्पतिषु तस्मैदेवाय नमो नमः।।''

अति प्राचीन काल से भारत धार्मिक सोच, वैज्ञानिक शोध एवं प्राकृतिक बोध का मुख्य स्थल रहा है। यह कथन सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि 'बन ही जीवन है'। सभ्यता का विकास एवं संस्कृति के पोषण का आधार स्थल वन ही रहा है। अरण्यक जैसे दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना वनों में ही सम्पादित हुई अर्थात् वन अति प्राचीन काल से ही धार्मिक चिन्तकों की शरण स्थली एवं आध्यात्मिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। हमारी भारतीय संस्कृति में वृक्षों को देवताओं का वास स्थल बताया गया तथा विभिन्न जीव जन्तुओं को विभिन्न देवताओं के साथ समीकृत किया गया। **स्कन्द पुरण** में वर्णित है–

''वृक्ष के मूल में ब्रह्मा हैं, तने में विष्णु, शाखाओं में रुद्र एवं शिव है तथा पात्रों में देवता निवास करते हैं। अतः हे वृक्षराज! आपको नमस्कार है।''

अन्यत्र वर्णन मिलता है 'वृक्षो रक्षति रक्षितः'। अर्थात् यदि हम वृक्ष की रक्षा करेंगे तो वृक्ष भी हमारी रक्षा करेंगे। उक्त तथ्य न केवल व्यक्ति के भौतिक एवं आर्थिक संसाधन बल्कि सामाजिक, धार्मिक, चिकित्सिय आवश्यकताओं के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण में महती योगदान के कारण अति महत्वपूर्ण है। हमारे महान आयुर्विज्ञानियों के अनुसार संसार में ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जो औषधीय गुणों से युक्त न हो और संभवतः इसी नाते वृक्षों को वन्दनीय कहा गया है। **भामिनी विलास**[3] के अनुसार, ''जो वृक्ष फूल–पत्ते एवं फलों के बोझ को उठाए हुए, धूप की तपन और शीत की पीड़ा सहन करता है, उस वंदनीय श्रेष्ठ तरू को नमस्कार है।''

वृक्षों तथा फूलों की सुरक्षा एवं वन संरक्षण का आदर्श उदाहरण देवताओं का किसी न किसी वृक्ष से संबंधित करने के संदर्भ से भी ज्ञात होता है। मत्स्यपुराण में वृक्ष को 10 पुत्रों के बराबर बताया गया है। इन सबका सबसे बड़ा फायदा यह था कि मनुष्य इन सबकी रक्षा करना अपना धर्म समझता था। पंचवटी रोपण से पूर्व दीप यज्ञ जैसे अनुष्ठान का वर्णन प्राचीन भारतीय साहित्यों में प्राप्य है। स्कन्द पुराण में 5 पवित्र छायादार वृक्ष (बड़, पीपल, बेल, आंवला, अशोक) के समूह को पंचवटी कहा गया है। जो मानव जीवन की उपयोगिता एवं पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण कारक के रूप में दृष्टिगत होता है। पीपल के वृक्ष की महिमा का गुणगान स्कन्द पुराण के 247 वें अध्याय में मिलता है। पीपल अर्थात् 'गुह्यपूष्पक' (इसमें फूल नहीं लगता बल्कि सीधे फल लगते है, इसके पूजन से समस्त देवताओं की पूजा सम्पन्न हो जाती है। **गीता**[4] में कृष्ण ने भाष्य किया है– ''मैं वृक्षों में पीपल हूँ।'' पीपल को विष्णु का अवतार तथा नीम को ब्रह्माण माना गया है। नीम को ब्रह्माण–धर्म में जाति के आधार पर नहीं

उसके औषधीय गुणों व अपने चारों ओर के वातावरण शुद्ध रखने के कारण माना गया है। इस प्रकार नीम दूसरों को नीरोग एवं सुखी रखता है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो पीपल ही एक मात्र वृक्ष है जो बराबर प्राणवायु (ऑक्सीजन) छोड़ता है तथा पर्यावरण से प्रदूषण को निष्काषित करता है। पदम् पुराण में वर्णित है कि ''जो मनुष्य सड़क के किनारे तथा जलाशयों के तट पर वृक्ष लगाता है, वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक फूलता–फलता है जितने वर्षो तक वह वृक्ष फूलता–फलता है।''

स्मरणीय है कि वन मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का मूलाधार रहे है, वन उपनिषदीय ग्रंथों का आधार स्थल रहे है जहाँ चिन्तकों ने अप्रतिम ग्रंथों की रचना कर मानव जीवन कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में भूमिका निभाई है। महात्मा बुद्ध ने कहा है– वन असीम दया एवं परोपकार की ऐसी विशेष देन है जो अपने निर्वाह के लिए कुछ मांग नहीं करता तथा अपने जीवन के उत्पादों को उदारतापूर्वक देता है। यह सभी जीवों को संरक्षण प्रदान करता है और उस लकड़हारे को भी छाया देता है, जो कि उसका विनाश करता है।[5]

वस्तुतः भारतीय संस्कृति में ऊर्जा के अपरिमित श्रोत सूर्य देव को हमारे इस ग्रह का जीवन दाता माना जाता है, बिना उसके जीवन का अस्तित्व असंभव है। यही कारण है कि **ऋग्वेद**[6] में ऋषियों की कामना है कि सूर्य से कभी हमारा वियोग न हो। अन्यत्र सूर्य को **ऋग्वेद** में स्थावर–जंगम की आत्मा भी कहा गया है। **उपनिषदों**[7] में सूर्य को प्राण की संज्ञा दी गई है।

पर्यावरणीय दृष्टि से जल जीव जन्तुओं के अस्तित्व एवं सम्बर्द्धन के लिए आधारभूत तत्व है। 'जल ही जीवन है', की उक्ति अति प्राचीन काल से भारतीय वांगमय में दिखाई देता है। पानी को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त होने के कारण ही 'वरुणदेव' कहा गया है। नारायणोपनिषद के अनुसार 'जल ही विश्व में सर्वभूत है, जल ही प्राण है, जल ही पशु है, जल ही ब्रह्म है, जल ही अमृत है, जल ही स्वराज्य है, जल ही वेद है, जल ही आकाश लोक है।' **भूमि–सुक्त**[8] में वर्णित है; 'हमारे शरीर के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होते रहें।' महाभारत में तो नदियों को विश्व की माता कहा गया है–[10]

भारतीय वांऽग्मय के अनुसार गंगा हमारे लिए आम नदी नहीं है, अपितु भारतीय संस्कृति की संवहिनी भी है। गंगा–अंतः सलिता है,उसका वास हमारे हृदय में है। वह पाप–पुण्य तोया है, अतः पापहारिणी भी **यजुर्वेद**[11] में जहाँ एक ओर कहा गया है कि हमें जल को दूषित नहीं करना चाहिए तथा वृक्ष एवं वनस्पतियों को क्षति नहीं पहुंचानी चाहिए तो दूसरी ओर वर्णित है कि जल को शुद्ध रखने, पौष्टिक गुणों से युक्त करने एवं औषधियों को जल सींचकर सुरक्षित रखना चाहिए। **मनुस्मृति**[12] में कहा गया है कि पानी में मल–मूत्र, थूक या अन्य दूषित पदार्थ, रक्त या विष का विसर्जन न करें।

वर्तमान विश्व जगत के सामने जो सर्वाधिक चर्चा का विषय बना हुआ है उसमें वायु प्रदूषण का प्रमुख स्थान है। हमारे वायुमण्डल में दिनों दिन होने वाले हानिकारक परिवर्तनों ने मानव सभ्यता की निरन्तरता पर प्रश्न चिन्ह लगाना शुरू कर दिया है। विभिन्न प्रकार की हानिकारक गैंसों की वृद्धि ने मानवीय जीवन के शारीरिक–मानसिक स्थिति को कुप्रभावित कर अनेक प्रकार की बिमारियों को जन्म दिया है। प्रश्न उठता है कि इन समस्याओं का समाधान कैसे निकाला जाए? इस संदर्भ में दो आयामी प्रयासों की जरूरत है। एक तरफ नवीन वैज्ञानिक ज्ञान एवं शोधों का उपयोग कर वायुवीय स्वच्छता एवं संपुष्टि का प्रयास किया जाए तो दूसरी तरफ हमारी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षण एवं संवर्द्धन किया जाए, जैसेकि वैदिक एवं उपनिषदीय परम्पराओं में मिलता है। **वेदों**[13] में वायु को भेषज गुणों से युक्त माना गया है। उपनिषदों में दैवीय शक्ति की अवधारणा निहित है। **उपनिषदों**[14] के अनुसार वायु ही प्राण बन कर शरीर में निवास करता है।

महान दार्शनिक एवं वैज्ञानिक गेटे का कथन समीचीन प्रतीत होता है कि प्रत्येक वस्तु जल से उत्पन्न होती है तथा जल के द्वारा ही प्रतिपादित है। यही कारण है कि प्राचीन भारत में जल संरक्षण का व्यापक उपाय किया गया दिखाई देता है। जल संरक्षण का अभिलेखीय प्रमाण कलिंग में महापद्मनन्द द्वारा नहर खुदवाने से लेकर खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख, रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से भी मिलता है। **मत्स्यपुरण**[16] में तो यहाँ तक कहा गया है कि–

''दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, दश तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।''

ध्यातव्य है कि वनों के कटने, बाँधों के निर्माण, नगरीकरण, ऊँची–ऊँची इमारतों के निर्माण ने व्यापक स्तर पर पर्यावरणीय असंतुलन को गति प्रदान किया है जिसका प्रभाव बाढ़, सुनामी, बादल फटने जैसी घटनाओं के रूप में देखा जा रहा है। इन घटनाओं ने बड़े–बड़े नगरों व कस्बों को विलुप्त कर मानव जीवन को कालकवलित कर दिया तो दूसरी ओर बचे हुए लोगों को अनेक संक्रामक बिमारियों से ग्रसित करने में भूमिका–निभाई है जिसका ज्वलंत उदाहरण उत्तराखण्ड की घटना है।

बाढ़ की विभीषिका, अतिवृष्टि, बढ़ती गर्मी, ऋतु चक्र की गड़बड़ियों, ओजोन परत में छिद्र तथा सूखा एवं भूस्खलन जैसी समस्याएँ चीख–चीख कह रहे है कि वनों से मानवीय छेड़–छाड़ बंद होनी चाहिए, क्योंकि चिन्तनीय है कि जब हमारे पास वन ही नहीं होगा तो हम कैसे रहेंगे? और जब हम ही नही ंतो हमारी संस्कृति कैसे रहेगी? अर्थात् समय की मांग है कि हम अपनी सांस्कृतिक जागरूकता का परिचय देते हुए वनों के संरक्षण एवं संवर्द्धन को महत्व है।

ध्यातव्य यह भी है कि प्राकृतिक एवं परिस्थितिकीय तंत्र में हो रहे मानवीय छेड़–छाड़ की गतिविधियों ने जिस प्रकार से पर्यावरणीय संकट की विध्वंशकारी अवस्था को आसन्न रूप में ला खड़ा

किया है उसका निदान हम गांधी एवं रूसो जैसे चिन्तकों की अवधारणा को साकार रूप देकर कर सकते है। रूसो का नारा था– **'प्रकृति को ओर लौटो'** तो गांधी की मान्यता है कि यह पृथ्वी सबकी जरूरतों को पूरा कर सकती है परन्तु किसी एक का भी लालच पूरा नहीं कर सकती अर्थात् मानव की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता प्रकृति के पास है लेकिन मानव की बढ़ती लिप्सा संकट का कारण है और गांधी जी के इस विचार का समर्थन बुटलैंड समिति की रिपोर्ट से भी होती है और यही सतत एवं समावेशी विकास का आधार भी है।

इस प्रकार भारतीय साहित्यों के सम्यक् अनुशीलन के आधार पर हम कह सकते है कि जब तक प्रकृति एवं व्यक्ति में उपभोक्ता का सम्बन्ध होगा, परिपूरकता के भाव का अभाव होगा तब तक स्वस्थ विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसे क्षण में हम अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं वैदिक ऋषियों, वैद्यों की वाणी की रक्षा का शुभ संकल्प लें और स्वीकार करें कि धरती हमारी माँ है और हम धरती के पुत्र हैं। यथा–

''माता भूमिः पुत्रोऽहमं पृथिव्याः।
नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्यैः।।''

संदर्भ सूची

1— हरिचन्द्र व्यास कैलाचन्द्र व्यास, मानव और पर्यावरण, पृ0 103।

2— 'मूल ब्रह्मा त्वचे विष्णुः शाखा मध्ये महेश्वरः।।
पात्रे—पात्रे देवानां वृक्षराज नमोऽस्तुते।।''

3— 'धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनां धर्मव्यथां वहति
शीत भवा रूजश्च
यो देहमर्पयति चान्य सुरवस्य हेतोस्तस्मै
वदानयगुरवे तरवे नमोऽस्तु।।'

4— 'अश्वत्थः वृक्षांणाम'

5— 'शम्भू पटवा, पर्यावरण एवं संस्कृति, पृष्ठ 51, वाग्देवी प्रकाशन, नई दिल्ली।

6— 'नः सूर्यस्य संदृशे मा युयोधाः (ऋक 2/33/1)

7— 'सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च' (ऋक 1/55/1)

8— 'आदिव्य है वै प्राणः' (प्रश्न उप. 1/15)

9— 'शुद्धा न आपस्तत्वे क्षरन्तु।' (भूमि सूक्त, 12/1/30)

10— 'माऽपो हिंसी मा ओषधी हिंसी' (यजुर्वेद, 6/22)

11— 'अपः पिन्व ओषधीर्जिन्व' (यजुर्वेद, 14/8)।

12— डॉ0 सुजाता विष्ट 'पर्यावरण शिक्षा', पृ0 114, तक्षाशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

13— 'नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्टोवनं समुत्सृजेत।
अमेध्यलिप्तमन्यद्धा लोहितं वा विषाणि वा।' (मनुस्मृति, 4—56)।

14— 'आ वात वाहि भेषज विवात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।'' (ऋक, 137/3)

15— 'वायु है वै प्राणो भूत्व शरीरमाविशत्'

16— 'दश कूप समावापी दशवापी समोह्रदः।
दश—ह्रद—समः पुत्रो, दश—पुत्र समोद्रमुः।।'